काबुलीवाला

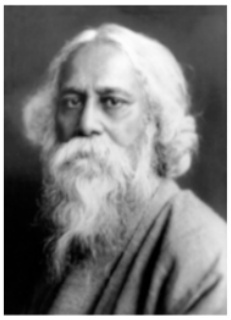

रविंद्रनाथ टैगोर

काबुलीवाला

मेरी पाँच वर्ष की छोटी लड़की मिनी से पल भर भी बात किए बिना नहीं रहा जाता। दुनिया में आने के बाद भाषा सीखने में उसने सिर्फ एक ही वर्ष लगाया होगा। उसके बाद से जितनी देर तक सो नहीं पाती है, उस समय का एक पल भी वह चुप्पी में नहीं खोती। उसकी माता बहुधा डाँट-फटकारकर उसकी चलती हुई जबान बन्द कर देती

https://www.hindiadda.com/kabulivala/

है; किन्तु मुझसे ऐसा नहीं होता। मिनी का मौन मुझे ऐसा अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है, कि मुझसे वह अधिक देर तक सहा नहीं जाता और यही कारण है कि मेरे साथ उसके भावों का आदान-प्रदान कुछ अधिक उत्साह के साथ होता रहता है।

सवेरे मैंने अपने उपन्यास के सत्तरहवें अध्याय में हाथ लगाया ही था कि इतने में मिनी ने आकर कहना आरम्भ कर दिया, "बाबूजी! रामदयाल दरबान कल 'काक' को कौआ कहता था। वह कुछ जानता ही नहीं, न बाबूजी?"

विश्व की भाषाओं की विभिन्नता के विषय में मेरे कुछ बताने से पहले ही उसने दूसरा प्रसंग छेड़ दिया, "बाबूजी! भोला कहता था आकाश मुँह से पानी फेंकता है, इसी से बरसा होती है। अच्छा बाबूजी, भोला झूठ-मूठ कहता है न? खाली बक-बक किया करता है, दिन-रात बकता रहता है।"

इस विषय में मेरी राय की तनिक भी राह न देख कर, चट से धीमे स्वर में एक जटिल प्रश्न कर बैठी, "बाबूजी, माँ तुम्हारी कौन लगती है?"

मन ही मन में मैंने कहा - साली और फिर बोला, "मिनी, तू जा, भोला के साथ खेल, मुझे अभी काम है, अच्छा।"

तब उसने मेरी मेज के पार्श्व में पैरों के पास बैठकर अपने दोनों घुटने और हाथों को हिला-हिलाकर बड़ी शीघ्रता से मुंह चलाकर 'अटकन-बटकन दही चटाके' कहना आरम्भ कर दिया। जबकि मेरे उपन्यास के अध्याय में प्रतापसिंह उस समय कंचनमाला को लेकर रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार में बन्दीगृह के ऊंचे झरोखे से नीचे कलकल करती हुई सरिता में कूद रहे थे।

मेरा घर सड़क के किनारे पर था, सहसा मिनी अपने अटकन-बटकन को छोड़कर कमरे की खिड़की के पास दौड़ गई, और जोर-जोर से चिल्लाने लगी, "काबुलवाला, ओ काबुलवाला।"

मैले-कुचैले ढीले कपड़े पहने, सिर पर कुल्ला रखे, उस पर साफा बाँधे कन्धे पर सूखे फलों की मैली झोली लटकाए, हाथ में चमन के अंगूरों की कुछ पिटारियाँ लिए, एक लम्बा-तगड़ा-सा काबुली मन्द चाल से सड़क पर जा रहा था। उसे देखकर मेरी छोटी बेटी के हृदय में कैसे भाव उदय हुए यह बताना असम्भव है। उसने जोरों से पुकारना शुरू किया। मैंने सोचा, अभी झोली कन्धे पर डाले, सर पर एक मुसीबत आ खड़ी होगी और मेरा सत्सतरहवाँ अध्याय आज अधूरा रह जाएगा।

किन्तु मिनी के चिल्लाने पर ज्यों ही काबुली ने हँसते हुए उसकी ओर मुँह फेरा और घर की ओर बढ़ने लगा; त्यों ही मिनी भय खाकर भीतर भाग गई। फिर उसका पता ही नहीं लगा कि कहाँ छिप गई। उसके छोटे-से मन में वह अन्धविश्वास बैठ गया था कि उस मैली-कुचैली झोली के अन्दर ढूँढ़ने पर उस जैसी और भी जीती-जागती बच्चियाँ निकल सकती हैं।

इधर काबुली ने आकर मुस्कराते हुए मुझे हाथ उठाकर अभिवादन किया और खड़ा हो गया। मैंने सोचा, वास्तव में प्रतापसिंह और कंचनमाला की दशा अत्यन्त संकटापन्न है, फिर भी घर में बुलाकर इससे कुछ न खरीदना अच्छा न होगा।

कुछ सौदा खरीदा गया। उसके बाद मैं उससे इधर-उधर की बातें करने लगा। खुद रहमत, रूस, अंग्रेज, सीमान्त रक्षा के बारे में गप-शप होने लगी।

अन्त में उठकर जाते हुए उसने अपनी मिली-जुली भाषा में पूछा, "बाबूजी, आपकी बच्ची कहाँ गई?"

मैंने मिनी के मन से व्यर्थ का भय दूर करने के अभिप्राय से उसे भीतर से बुलवा लिया। वह मुझसे बिल्कुल लगकर काबुली के मुख और झोली की ओर सन्देहात्मक दृष्टि डालती हुई खड़ी रही। काबुली ने झोली में से किसमिस और खुबानी निकालकर देना चाहा, पर उसने नहीं लिया और दुगुने सन्देह के साथ मेरे घुटनों से लिपट गई। उसका पहला परिचय इस प्रकार हुआ।

इस घटना के कुछ दिन बाद एक दिन सवेरे मैं किसी आवश्यक कार्यवश बाहर जा रहा था। देखूँ तो मेरी बिटिया दरवाजे के पास बेंच पर बैठी हुई काबुली से हँस-हँसकर बातें कर रही है और काबुली उसके पैरों के समीप बैठा-बैठा मुस्कराता हुआ, उन्हें ध्यान से सुन रहा है और बीच-बीच में अपनी राय मिली-जुली भाषा में व्यक्त करता जाता है। मिनी को अपने पाँच वर्ष के जीवन में, बाबूजी के सिवा, ऐसा धैर्यवाला श्रोता शायद ही कभी मिला हो। देखा तो, उसका फिराक का अग्रभाग बादाम-किसमिस से भरा हुआ है। मैंने काबुली से कहा, "इसे यह सब क्यों दे दिया? अब कभी मत देना।" कहकर कुर्ते की जेब से एक अठन्नी निकालकर उसे दी। उसने बिना किसी हिचक के अठन्नी लेकर अपनी झोली में रख ली।

कुछ देर बाद, घर लौटकर देखता हूं तो उस अठन्नी ने बड़ा भारी उपद्रव खड़ा कर दिया है।

मिनी की माँ एक सफेद चमकीला गोलाकार पदार्थ हाथ में लिए डाँट-डपटकर मिनी से पूछ रही थी, "तूने यह अठन्नी पाई कहाँ से, बता?"

मिनी ने कहा, "काबुल वाले ने दी है।"

"काबुल वाले से तूने अठन्नी ली कैसे, बता?"

मिनी ने रोने का उपक्रम करते हुए कहा, "मैंने माँगी नहीं थी, उसने आप ही दी है।"

मैंने जाकर मिनी की उस अकस्मात मुसीबत से रक्षा की, और उसे बाहर ले आया।

मालूम हुआ कि काबुली के साथ मिनी की यह दूसरी ही भेंट थी, सो बात नहीं। इस दौरान में वह रोज आता रहा है और पिस्ता-बादाम की रिश्वत दे-देकर मिनी के छोटे से हृदय पर बहुत अधिकार कर लिया है।

देखा कि इस नई मित्रता में बँधी हुई बातें और हँसी ही प्रचलित है। जैसे मेरी बिटिया, रहमत को देखते ही, हँसती हुई पूछती, "काबुल वाला, ओ काबुल वाला, तुम्हारी झोली के भीतर क्या है? काबुली, जिसका नाम रहमत था, एक अनावश्यक चन्द्र-बिन्दु जोड़कर मुस्कराता हुआ उत्तर देता, "हाँ बिटिया उसके परिहास का रहस्य क्या है, यह तो नहीं कहा जा सकता; फिर भी इन नए मित्रों को इससे तनिक विशेष खेल-सा प्रतीत होता है और जाड़े के प्रभात में एक सयाने और एक बच्ची की सरल हँसी सुनकर मुझे भी बड़ा अच्छा लगता।

उन दोनों मित्रों में और भी एक-आध बात प्रचलित थी। रहमत मिनी से कहता, "तुम ससुराल कभी नहीं जाना, अच्छा?"

हमारे देश की लड़कियाँ जन्म से ही 'ससुराल' शब्द से परिचित रहती हैं; किन्तु हम लोग तनिक कुछ नई रोशनी के होने के कारण तनिक-सी बच्ची को ससुराल के विषय में विशेष ज्ञानी नहीं बना सके थे, अत: रहमत का अनुरोध वह स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाती थी; इस पर भी किसी बात का उत्तर दिए बिना चुप रहना उसके स्वभाव के बिल्कुल ही विरुद्ध था। उलटे, वह रहमत से ही पूछती, "तुम ससुराल जाओगे?"

रहमत काल्पनिक श्वसुर के लिए अपना जबर्दस्त घूँसा तानकर कहता, "हम ससुर को मारेगा।"

सुनकर मिनी 'ससुर' नामक किसी अनजाने जीव की दुरवस्था की कल्पना करके खूब हँसती।

देखते-देखते जाड़े की सुहावनी ऋतु आ गई। पूर्व युग में इसी समय राजा लोग दिग्विजय के लिए कूच करते थे। मैं कलकत्ता छोड़कर कभी कहीं नहीं गया, शायद इसीलिए मेरा मन ब्रह्माण्ड में घूमा करता है। यानी, मैं अपने घर में ही चिर प्रवासी हूँ, बाहरी ब्रह्माण्ड के लिए मेरा मन सर्वदा आतुर रहता है। किसी विदेश का नाम आगे आते ही मेरा मन वहीं की उड़ान लगाने लगता है। इसी प्रकार किसी विदेशी को देखते ही तत्काल मेरा मन सरिता-पर्वत-बीहड़ वन के बीच में एक कुटीर का दृश्य देखने लगता है और एक उल्लासपूर्ण स्वतंत्र जीवन-यात्रा की बात कल्पना में जाग उठती है।

इधर देखा तो मैं ऐसी प्रकृति का प्राणी हूँ, जिसका अपना घर छोड़कर बाहर निकलने में सिर कटता है। यही कारण है कि सवेरे के समय अपने छोटे- से कमरे में मेज के सामने बैठकर उस काबुली से गप-शप लड़ाकर बहुत कुछ भ्रमण का काम निकाल लिया करता हूँ। मेरे सामने काबुल का पूरा चित्र खिंच जाता। दोनों ओर ऊबड़खाबड़, लाल-लाल ऊँचे दुर्गम पर्वत हैं और रेगिस्तानी मार्ग, उन पर लदे हुए ऊँटों की कतार जा रही है। ऊँचे-ऊँचे साफे बाँधे हुए सौदागर और यात्री कुछ ऊँट की सवारी पर हैं तो कुछ पैदल ही जा रहे हैं। किन्हीं के हाथों में बरछा है, तो कोई बाबा आदम के जमाने की पुरानी बन्दूक थामे हुए है। बादलों की भयानक गर्जन के स्वर में काबुली लोग अपने मिली-जुली भाषा में अपने देश की बातें कर रहे हैं।

मिनी की माँ बड़ी वहमी तबीयत की है। राह में किसी प्रकार का शोर-गुल हुआ नहीं कि उसने समझ लिया कि संसार भर के सारे मस्त शराबी हमारे ही घर की ओर दौड़े आ रहे हैं। उसके विचारों में यह दुनिया इस छोर से उस छोर तक चोर-डकैत, मस्त, शराबी, साँप, बाघ, रोगों, मलेरिया,तिलचट्टे और अंग्रेजों से भरी पड़ी है। इतने दिन हुए इस दुनिया में रहते हुए भी उसके मन का यह रोग दूर नहीं हुआ।

रहमत काबुली की ओर से भी वह पूरी तरह निश्चिंत नहीं थी। उस पर विशेष नजर रखने के लिए मुझसे बार-बार अनुरोध करती रहती। जब मैं उसके शक को परिहास के आवरण से ढकना चाहता तो मुझसे एक साथ कई प्रश्न पूछ बैठती, "क्या कभी किसी का लड़का नहीं चुराया गया? क्या काबुल में गुलाम नहीं बिकते? क्या एक लम्बे-तगड़े काबुली के लिए एक छोटे बच्चे का उठा ले जाना असम्भव है?" इत्यादि।

मुझे मानना पड़ता कि यह बात नितान्त असम्भव हो सो बात नहीं पर भरोसे के काबिल नहीं। भरोसा करने की शक्ति सबमें समान नहीं होती, अत: मिनी की माँ के मन में भय ही रह गया लेकिन केवल इसीलिए बिना किसी दोष के रहमत को अपने घर में आने से मना न कर सका।

हर वर्ष रहमत माघ मास में लगभग अपने देश लौट जाता है। इस समय वह अपने व्यापारियों से रुपया-पैसा वसूल करने में तल्लीन रहता है। उसे घर-घर, दुकान-दुकान घूमना पड़ता है, फिर भी मिनी से उसकी भेंट एक बार अवश्य हो जाती है। देखने में तो ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों के मध्य किसी षड्यंत्र का श्रीगणेश हो रहा है। जिस दिन वह सवेरे नहीं आ पाता, उस दिन देखूँ तो वह संध्या को हाजिर है। अँधेरे में घर के कोने में उस ढीले-ढाले जामा-पाजामा पहने, झोली वाले लम्बे-तगड़े आदमी को देखकर सचमुच ही मन में अचानक भय-सा पैदा हो जाता है।

लेकिन, जब देखता हूं कि मिनी 'ओ काबुल वाला' पुकारती हुई हँसती-हँसती दौड़ी आती है और दो भिन्न-भिन्न आयु के असम मित्रों में वही पुराना हास-परिहास चलने लगता है, तब मेरा सारा हृदय खुशी से नाच उठता है।

एक दिन सवेरे मैं अपने छोटे कमरे में बैठा हुआ नई पुस्तक के प्रूफ देख रहा था। जाड़ा, विदा होने से पूर्व, आज दो-तीन दिन खूब जोरों से अपना प्रकोप दिखा रहा है। जिधर देखो, उधर उस जाड़े की ही चर्चा है। ऐसे जाड़े-पाले में खिड़की में से सवेरे की धूप मेज के नीचे मेरे पैरों पर आ पड़ी। उसकी गर्मी मुझे अच्छी प्रतीत होने लगी। लगभग आठ बजे का समय होगा। सिर से मफलर लपेटे ऊषाचरण सवेरे की सैर करके घर की ओर लौट रहे थे। ठीक इस समय राह में एक बड़े जोर का शोर सुनाई दिया।

देखूँ तो अपने उस रहमत को दो सिपाही बाँधे लिए जा रहे हैं। उनके पीछे बहुत से तमाशाई बच्चों का झुंड चला आ रहा है। रहमत के ढीले-ढाले कुर्ते पर खून के दाग हैं और एक सिपाही के हाथ में खून से लथपथ छुरा। मैंने द्वार से बाहर निकलकर सिपाही को रोक लिया, पूछा, "क्या बात है?"

कुछ सिपाही से और कुछ रहमत से सुना कि हमारे एक पड़ोसी ने रहमत से रामपुरी चादर खरीदी थी। उसके कुछ रुपए उसकी ओर बाकी थे, जिन्हें देने से उसने साफ इन्कार कर दिया। बस इसी पर दोनों में बात बढ़ गई और रहमत ने छुरा निकालकर घोंप दिया।

रहमत उस झूठे बेईमान आदमी के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के अपशब्द सुना रहा था। इतने में "काबुल वाला! ओ काबुल वाला!" पुकारती हुई मिनी घर से निकल आई।

रहमत का चेहरा क्षण-भर में कौतुक हास्य से चमक उठा। उसके कन्धे पर आज झोली नहीं थी। अत: झोली के बारे में दोनों मित्रों की अभ्यस्त आलोचना न चल सकी। मिनी ने आते के साथ ही उसने पूछा, "तुम ससुराल जाओगे।"

रहमत ने प्रफुल्लित मन से कहा, "हां, वहीं तो जा रहा हूं।"

रहमत ताड़ गया कि उसका यह जवाब मिनी के चेहरे पर हँसी न ला सकेगा और तब उसने हाथ दिखाकर कहा, "ससुर को मारता, पर क्या करूँ, हाथ बँधे हुए हैं।"

छुरा चलाने के जुर्म में रहमत को कई वर्ष का कारावास मिला।

रहमत का ध्यान धीरे-धीरे मन से बिल्कुल उतर गया। हम लोग अब अपने घर में बैठकर सदा के अभ्यस्त होने के कारण, नित्य के काम-धंधों में उलझे हुए दिन बिता रहे थे। तभी एक स्वाधीन पर्वतों पर घूमने वाला इन्सान कारागार की प्राचीरों के अन्दर कैसे वर्ष पर वर्ष काट रहा होगा, यह बात हमारे मन में कभी उठी ही नहीं।

और चंचल मिनी का आचरण तो और भी लज्जाप्रद था। यह बात उसके पिता को भी माननी पड़ेगी। उसने सहज ही अपने पुराने मित्र को भूलकर पहले तो नबी सईस के साथ मित्रता जोड़ी, फिर क्रमश: जैसे-जैसे उसकी वयोवृध्दि होने लगी वैसे-वैसे सखा के बदले एक के बाद एक उसकी सखियाँ जुटने लगीं और तो क्या, अब वह अपने बाबूजी के लिखने के कमरे में भी दिखाई नहीं देती। मेरा तो एक तरह से उसके साथ नाता ही टूट गया है।

कितने ही वर्ष बीत गये। वर्षों बाद आज फिर शरद ऋतु आई है। मिनी की सगाई की बात पक्की हो गई। पूजा की छुट्टियों में उसका विवाह हो जाएगा। कैलाशवासिनी के साथ-साथ अबकी बार हमारे घर की आनन्दमयी मिनी भी माँ-बाप के घर में अँधेरा करके ससुराल चली जाएगी।

सवेरे दिवाकर बड़ी सज-धज के साथ निकले। वर्षों के बाद शरद ऋतु की यह नई धवल धूप सोने में सुहागे का काम दे रही है। कलकत्ता की सँकरी गलियों से परस्पर

सटे हुए पुराने ईंटझर गन्दे घरों के ऊपर भी इस धूप की आभा ने एक प्रकार का अनोखा सौन्दर्य बिखेर दिया है।

हमारे घर पर दिवाकर के आगमन से पूर्व ही शहनाई बज रही है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जैसे यह मेरे हृदय की धड़कनों में से रो-रोकर बज रही हो। उसकी करुण भैरवी रागिनी मानो मेरी विच्छेद पीड़ा को जाड़े की धूप के साथ सारे ब्रह्माण्ड में फैला रही है। मेरी मिनी का आज विवाह है।

सवेरे से घर बवंडर बना हुआ है। हर समय आने-जाने वालों का ताँता बँधा हुआ है। आँगन में बाँसों का मंडप बनाया जा रहा है। हरेक कमरे और बरामदे में झाड़फानूस लटकाए जा रहे हैं, और उनकी टक-टक की आवाज मेरे कमरे में आ रही है। 'चलो रे', 'जल्दी करो', 'इधर आओ' की तो कोई गिनती ही नहीं है।

मैं अपने लिखने-पढ़ने के कमरे में बैठा हुआ हिसाब लिख रहा था। इतने में रहमत आया और अभिवादन करके खड़ा हो गया।

पहले तो मैं उसे पहचान न सका। उसके पास न तो झोली थी और न पहले जैसे लम्बे-लम्बे बाल और न चेहरे पर पहले जैसी दिव्य ज्योति ही थी। अन्त में उसकी मुस्कान देखकर पहचान सका कि वह रहमत है।

मैंने पूछा, "क्यों रहमत, कब आए?"

उसने कहा, "कल शाम को जेल से छूटा हूँ।"

सुनते ही उसके शब्द मेरे कानों में खट से बज उठे। किसी खूनी को मैंने कभी आँखों से नहीं देखा था, उसे देखकर मेरा सारा मन एकाएक सिकुड़-सा गया। मेरी यही इच्छा होने लगी कि आज के इस शुभ दिन में वह इंसान यहाँ से टल जाए तो अच्छा हो।

मैंने उससे कहा, "आज हमारे घर में कुछ आवश्यक काम है, सो आज मैं उसमें लगा हुआ हूं। आज तुम जाओ, फिर आना।"

मेरी बात सुनकर वह उसी क्षण जाने को तैयार हो गया। पर द्वार के पास आकर कुछ इधर-उधर देखकर बोला, "क्या, बच्ची को तनिक नहीं देख सकता?"

शायद उसे यही विश्वास था कि मिनी अब तक वैसी ही बच्ची बनी है। उसने सोचा हो कि मिनी अब भी पहले की तरह 'काबुल वाला, ओ काबुल वाला' पुकारती हुई दौड़ी चली आएगी। उन दोनों के पहले हास-परिहास में किसी प्रकार की रुकावट न होगी? यहाँ तक कि पहले की मित्रता की याद करके वह एक पेटी अंगूर और एक कागज के दोने में थोड़ी-सी किसमिस और बादाम, शायद अपने देश के किसी आदमी से माँग-ताँगकर लेता आया था। उसकी पहले की मैली-कुचैली झोली आज उसके पास न थी।

मैंने कहा, "आज घर में बहुत काम है। सो किसी से भेंट न हो सकेगी।"

मेरा उत्तर सुनकर वह कुछ उदास-सा हो गया। उसी मुद्रा में उसने एक बार मेरे मुख की ओर स्थिर दृष्टि से देखा। फिर अभिवादन करके दरवाजे के बाहर निकल गया।

मेरे हृदय में जाने कैसी एक वेदना-सी उठी। मैं सोच ही रहा था कि उसे बुलाऊँ, इतने में देखा तो वह स्वयं ही आ रहा है।

वह पास आकर बोला, "ये अंगूर और कुछ किसमिस, बादाम बच्ची के लिए लाया था, उसको दे दीजिएगा।"

मैंने उसके हाथ से सामान लेकर पैसे देने चाहे, लेकिन उसने मेरे हाथ को थामते हुए कहा, "आपकी बहुत मेहरबानी है बाबू साहब, हमेशा याद रहेगी, पिसा रहने दीजिए।" तनिक रुककर फिर बोला- "बाबू साहब! आपकी जैसी मेरी भी देश में एक बच्ची है। मैं उसकी याद कर-कर आपकी बच्ची के लिए थोड़ी-सी मेवा हाथ में ले आया करता हूँ। मैं यह सौदा बेचने नहीं आता।"

कहते हुए उसने ढीले-ढाले कुर्ते के अन्दर हाथ डालकर छाती के पास से एक मैला-कुचैला मुड़ा हुआ कागज का टुकड़ा निकाला, और बड़े जतन से उसकी चारों तहें खोलकर दोनों हाथों से उसे फैलाकर मेरी मेज पर रख दिया।

देखा कि कागज के उस टुकड़े पर एक नन्हे-से हाथ के छोटे-से पंजे की छाप है। फोटो नहीं, तेलचित्र नहीं, हाथ में-थोड़ी-सी कालिख लगाकर कागज के ऊपर उसी का निशान ले लिया गया है। अपनी बेटी के इस स्मृति-पत्र को छाती से लगाकर, रहमत हर वर्ष कलकत्ता के गली-कूचों में सौदा बेचने के लिए आता है और तब वह कालिख चित्र मानो उसकी बच्ची के हाथ का कोमल-स्पर्श, उसके बिछड़े हुए विशाल वक्ष:स्थल में अमृत उड़ेलता रहता है।

देखकर मेरी आँखें भर आईं और फिर मैं इस बात को बिल्कुल ही भूल गया कि वह एक मामूली काबुली मेवा वाला है, मैं एक उच्च वंश का रईस हूँ। तब मुझे ऐसा लगने लगा कि जो वह है, वही मैं हूँ। वह भी एक बाप है और मैं भी। उसकी पर्वतवासिनी छोटी बच्ची की निशानी मेरी ही मिनी की याद दिलाती है। मैंने तत्काल ही मिनी को बाहर बुलवाया; हालाँकि इस पर अन्दर घर में आपत्ति की गई, पर मैंने उस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। विवाह के वस्त्रों और अलंकारों में लिपटी हुई बेचारी मिनी मारे लज्जा के सिकुड़ी हुई-सी मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

उस अवस्था में देखकर रहमत काबुल पहले तो सकपका गया। उससे पहले जैसी बातचीत न करते बना। बाद में हँसते हुए बोला, "लल्ली! सास के घर जा रही है क्या?"

मिनी अब सास का अर्थ समझने लगी थी, अत: अब उससे पहले की तरह उत्तर देते न बना। रहमत की बात सुनकर मारे लज्जा के उसके कपोल लाल हो उठे। उसने मुँह को फेर लिया। मुझे उस दिन की याद आई, जब रहमत के साथ मिनी का प्रथम परिचय हुआ था। मन में एक पीड़ा की लहर दौड़ गई।

मिनी के चले जाने के बाद, एक गहरी साँस लेकर रहमत फर्श पर बैठ गया। शायद उसकी समझ में यह बात एकाएक साफ हो गई कि उसकी बेटी भी इतने दिनों में बड़ी हो गई होगी, और उसके साथ भी उसे अब फिर से नई जान-पहचान करनी पड़ेगी। सम्भवत: वह उसे पहले जैसी नहीं पाएगा। इन आठ वर्षों में उसका क्या हुआ होगा, कौन जाने? सवेरे के समय शरद की स्निग्ध सूर्य किरणों में शहनाई बजने लगी और रहमत कलकत्ता की एक गली के भीतर बैठा हुआ अफगानिस्तान के मेरु-पर्वत का दृश्य देखने लगा।

मैंने एक नोट निकालकर उसके हाथ में दिया और कहा, "रहमत, तुम देश चले जाओ, अपनी लड़की के पास। तुम दोनों के मिलन-सुख से मेरी मिनी सुख पाएगी।"

रहमत को रुपए देने के बाद विवाह के हिसाब में से मुझे उत्सव-समारोह के दो-एक अंग छाँटकर काट देने पड़े। जैसी मन में थी, वैसी रोशनी नहीं करा सका, अंग्रेजी बाजा भी नहीं आया, घर में औरतें बड़ी बिगड़ने लगीं, सब कुछ हुआ, फिर भी मेरा विचार है कि आज एक अपूर्व ज्योत्स्ना से हमारा शुभ समारोह उज्ज्वल हो उठा।

https://www.hindiadda.com/kabulivala/